E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
IJAAS 2019; 1(1): 82-87
Received: 16-05-2019
Accepted: 19-06-2019

डॉ. प्रशान्त कुमार प्रसून
अंशकालिक सहायक प्राध्यापक,
धर्म समाज संस्कृत महाविद्यालय,
मुजफ्फरपुर कामेश्वर सिंह दरभंगा
संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा,
बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. प्रशान्त कुमार प्रसून
अंशकालिक सहायक प्राध्यापक,
धर्म समाज संस्कृत महाविद्यालय,
मुजफ्फरपुर कामेश्वर सिंह दरभंगा
संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा,
बिहार, भारत

बौद्ध धर्म और दलित चेतना

डॉ. प्रशान्त कुमार प्रसून

सारांश :
जाति रोग से ग्रसित समाज के ऊपर कुठाराघात कर धर्म के प्रति सजग व सुदृढ़ कर रूढ़िवादी विचारधारा को समाप्त करने एवं लोगों के मन में धर्म के प्रति मतभिन्नता को दूर करने का प्रयास यथोचित है। लोगों के मन में धार्मिक आक्रान्ताओं को दूर कर बौद्ध धर्म के प्रति लोगों को जारूक कर मनुष्य को जीवन जीने के शैली को प्रस्तुत किया गया है। बौद्ध धर्म के माध्यम से मनुष्य जीवन को उत्कृष्ट किया गया है। वसुदैव कुटुम्बकम् सर्वे जन सुखिनः, जैसी विचारधारा को लोगों के मन में प्रवाहित किया गया है। जिससे आज के परिवेश में सामाजिक चेतना स्वतः स्फुर्रित है।

प्रस्तावना :
बौद्ध दर्शन में पर्यावरणीय चेतनाः–जाति प्रथा भारतीय समाज की एक विकट समस्या है, जिसने भारतीय समाज के सम्यक् विकास को अति प्राचीन काल से अवरूद्ध किया है। इस प्रथा में कुछ विशिष्ट समुदाय के लोगों ने अपनी जन्म आधारित श्रेष्ठता के चलते समाज के अन्य लोगों को निकृष्ट और नीच दिखाकर शोषण किया। इस प्रथा के चलते समाज में अनेक प्रकार की गैरबराबरी का उदय हुआ। जिससे कुछ लोगों को अपने मूलभूत अधिकारों और सुख सुविधाओं से वंचित रहना पड़ा है।
भगवान बुद्ध ने अध्यात्मिक क्रांति के साथ–साथ सामाजिक क्रांति भी की थी लेकिन उनके इस पक्ष पर कम जोर दिया गया है। भगवान बुद्ध द्वारा उत्पन्न की गयी सामाजिक चेतना के परिणाम स्वरूप ही समाज में हीन और दलित समझे जाने वाली जातियों के लोगों ने सामाजिक कार्यक्रमों में बढ़–चढ़कर हिस्सा लेना प्रारम्भ कर दिया। महात्मा बुद्ध ने प्रज्ञा और करूणा पर सबसे अधिक जोर दिया था। प्रज्ञा में उनका अध्यात्मिक उपदेश है और करूणा में उनका सामाजिक उपदेश है, जिसमें उस समय के प्रचलित सभी कुप्रथाओं का जोरदार तर्कों से खण्डन किया था। बाद में बौद्ध धर्म में इस दोनों पक्ष प्रज्ञा और करूणा को महत्त्व देते हुए बोधिसत्व की विचार धारा का भी उदय हुआ जो महायान का मुख्य उद्देश्य था।
जाति प्रथा का यदि सूक्ष्म अध्ययन किया जाय तो मालूम होता है कि इनके तीन मुख्य आधार है ईश्वरीय, मूलोपत्ति और उत्तराधिकार में प्राप्त उच्चाता।
महत्मा बुद्ध ने इन तीनों को अतार्किक, मानव कल्पित और स्वार्थ से प्रेरित बताकर आलोचना की है।

जतिवादी का ईश्वरीय आधारः– जाति व्यवस्था के समर्थकों ने इसे वेदों से समर्थित बताया और वेद ईश्वरीय कृत होने के कारण जाति प्रथा को भी ईश्वरीय बताया। इसका विरोध ईश्वर का विरोध बताया। इस कारण से जन सामान्य में उसकी वैधता के सम्बन्ध में शंका करने का साहस नहीं किया। भगवान बृद्ध ने इस कुप्रथा के सशक्त आधार पर प्रहार करते हुए कहा कि किसी बात को मात्र शास्त्रों में उल्लिखित होने के कारण ही मत मान लो। उसे तुम अपनी बुद्धि और विवेक की कसौटी पर कशो, यदि वह खरी उतरे तब उसे मानो। अपनी बातों के सम्बन्ध में भी लोगों को तर्क की कसौटी पर खड़ा उताकर मानने को कहा।
इस प्रकार बुद्ध ने धर्म शास्तों की अमोघता पर प्रश्न चिन्ह लगाया और अविवेक पूर्ण बात को धर्म शास्त्र में होने के कारण मानने से लोगों को मना किया।

मूलोत्पत्ति सम्बन्धी आधारः– जाति के मूल उत्पत्ति के सम्बन्ध में जातिवादी समर्थक कहते हैं कि ''ब्रह्म के मुख के ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य और पैरों से शूद्र की उत्पत्ति होती है।'' अपनी जातीय उच्चता को सिद्ध करने के लिए ब्राह्मण बुद्ध से विवाद होने पर काल्पनिक कथा को दुहराते थे। लेकिन भगवान बुद्ध ने कहा कि मनुष्य अपने माता–पिता से जन्म लेता है न कि किसी कल्पित ब्राह्म से। ब्राह्मण भी शूद्र की भांति अपनी माताओं के उदर की पूरी सत्तोपत्ति प्रक्रिया को पूर्ण करके जन्में हैं। इस प्रकार सभी मनुष्य अपने–अपने माता–पिता से जन्मे हैं न किसी ब्राह्मण से। अतः ब्राह्मण को ब्राह्म के मुख से पैदा होने की कथा कल्पना के शिवाय कुछ नहीं है।

औत्पत्तिक समानता के कारण सभी मनुष्य समान है, न कोई श्रेष्ट और न कोई हेय।

उत्तराधिकार से प्राप्त उच्चताः– इस प्रकार की उच्चता का भगवान बुद्ध ने प्रबल शब्दों से खण्डन करते हुए कहा है कि ब्राहम्ण कर्म की विधि में विश्वास करने वाले थे, उनको भी अच्छा बुरा करने पर उसी प्रकार के परिणाम भुगतने पड़ते हैं जिस प्रकार के अन्य लोगों को, तो वे किस प्रकार श्रेष्ठ हुए? उपरोक्त तर्कों के आधार पर भगवान बुद्ध ने जाति प्रथा का विरोध किया।

जाति प्रथा में ब्राहम्ण नहीं पुरोहित हैं

महत्मा बुद्ध व्यवसाययिक स्वभाव से मुख्य चार जातियॉ बताई हैं:– पुरोहित, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। पुरोहित वर्ग को ब्राहम्ण कहने लगा और यह भी स्थापित करने लगा कि ब्राह्मण ज्ञान केवल इसी वर्ण को प्राप्त हो सकता है। महात्मा बुद्ध 'ब्राह्मण' शब्द की व्याख्या एक सर्वोच्च आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त व्यक्ति के लिए किया था। औपनिषद् काल में भी अनेक ब्राहम्णेतर जातियों ने सर्वोच्च आध्यात्मिक शक्ति को प्राप्त किया था, जैसे प्रवाहन, जैबालि, अजातुशत्रु जनक, ऐतरेय आदि। महात्मा बुद्ध ने स्वंय बुद्धत्व प्राप्त कर अनेक छोटी बड़ी सभी जतियों के लोगों को अर्हत्व प्राप्त करवाया। इसी अर्हत्व और बुद्धत्व प्राप्त व्यक्ति को महात्मा बुद्ध ब्राह्मण कहते थे। व्यावसायिक पौरोहित्व कर्म करने वालों को ब्राह्मण न कहकर पुरोहित कहते थे। तथाकथित जन्म पर आधारित ब्राह्मणका खण्डन किया।

जाति प्रथा समाप्ति के लिए उठाये बुद्ध के कदम

महत्मा बुद्ध ने जाति प्रथा का सैद्धान्तिक विरोध के साथ–साथ अनेक प्रकार के क्रियात्मक प्रयास भी किया। भगवान बुद्ध तथा अनके श्रावक शिष्य अपने दैनिकचर्या में किसी प्रकार की जातीय उच्चता या नीचता का ख्याल किये बिना व्यवहार करते थे। वेलोग सभी जति के लोगों के यहॉ भिक्षा मॉगते थे। वेलोग महाराज मगध नरेश बिम्बिसार के यहॉ भी भोजन करते थे और नीच–नीच समझे जाने वाले लोगों के यहॉ भी भोजन करते थे। निर्वाण के पूर्व अपना अंतिम भोजन चुन्द लुहार के घर महत्मा बुद्ध ने किया था। उनके प्रधान शिष्य आनंद ने अछूत बालिका चाणलिका के हाथ से उसके घड़े का पानी पिया था।

भिक्षु संघ का द्वार सभी जातियों के लिए बिना किसी भेदभाव के खुला था। उसमें प्रवेश का एक भात्र गुण था चारितिक उच्चता। इसीलिए संघ में ब्राह्मण, क्षत्रिय, चाण्डाल, मछुआरे, नाई, दासी, आदि सभी ऊॅची–नीची जातियों के लोग थे और सभी ने अपनी चारित्रिक उच्चता और साधना के बल पर बुद्धत्व को प्राप्त किया। भगवान बुद्ध के इन्हीं समतापूर्ण विचारों का प्रभाव पड़ने से अनके दलित और निम्न जातियों के लोगों में मनौवैज्ञानिक ढंग से आत्मविश्वास जग और वे सभी प्रकार के सामाजिक कार्यों में आगे बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेने लगे। बौद्ध धर्म के प्रभाव से भी नन्द वंश और पाल वंश जैसे नीच जातियों के लोगों के राजनैतिक सत्ता प्राप्त की और अनके दलित और शोषित जातियों के अध्यात्मिक प्रवृत्ति के लोगों ने अर्हत्व प्राप्त किया। भगवान बुद्ध की वही सामाजिक समता आज के लोगतांत्रिक पर्यावरणीय सामाजिक समता की आधार बनी।

पर्यावरणीय चेतना के परिप्रेक्ष्य में बौद्ध धर्म का इस देश से प्रभाव समाप्त होने के साथ–साथ दलितों, अतिपिछड़ों, पिछड़ों एवं गरीब–गुरूवों के ऊपर अस्पृश्यता और अत्याचार की मात्रा में बढ़ोतरी होने लगी। प्राचीन भारत में स्मृतिकाल से आजादी के पूर्व तक आधुनिक भारत में निम्न लोगों की दशा अतिदयनीय रही और आज भी वर्तमान पर्यावरण में देखने को मिल रही हैं।

बुद्ध ने स्वयं बुद्धत्व प्राप्ति से पूर्व कई गुरूओं सन्यासियों और योगियों के पास गये, लेकिन किसी पर अंधविश्वास नहीं किया। अनुभव और तर्क पर उनकी बात को परखा और जितनी सही लगी उतनी माना और शेष को नकार दिया और छोड़ते हुए बुद्धत्व के मार्ग पर बढ़ते रहे और अंत में अकेले बुद्धत्व प्राप्ति के लिए प्रवृत्त हुए। न कोई गुरू उनके साथ था न कोई ईश्वर और न कोई शास्त्र। वह थे, उनके दृढ़ संकल्प शक्ति और बुद्धत्व को प्राप्त करने की प्रबल जिज्ञासा। बुद्धत्व प्राप्ति के बाद बुद्ध ने कहा कि अकेले इस मार्ग चलना है, तुम्हारे साथ कोई नहीं होगा। मैं केवल मार्ग पर दाता हूँ, मुक्ति दाता नहीं। महात्मा बुद्ध ने कहा बलात् ओढ़ी गयी श्रद्धा और विश्वास कभी धोखा दे सकता है, डिग सकता है, लेकिन तर्क और विवेक से वरण की गयी श्रद्धा और विश्वास कभी डिग नहीं सकता। तथागत बुद्ध की इन्हीं विशेषता से मंत्र मुग्ध होते हुए लिखते हैं – ''बुद्ध धर्म के पहले वैज्ञानिक है। उने साथ श्रद्धा और आस्था की जरूरत नहीं है। उनके साथ तो पर्याप्त समझ है। अगर समझने को राजी हो, तो बुद्ध की नौका पर सवार हो जाओ। अगर श्रद्धा भी आयेगी तो समझ की छाया होगी। लेकिन समझ से पूर्व श्रद्धा की मॉग बुद्ध की नही है।''

इसी वैज्ञानिकता, बुद्धिवादिता और तार्किकता की प्रशंसा करते हुए बीसवीं शताब्दी के प्रखर दार्शनिक, गणितज्ञ, वण्ट्रेड रसेल लिखते हैं – ''ईसाई धर्म में पैदा होकर भी मैं ईसाई न बन सका, क्योंकि जीसस का व्यक्तित्व अवैज्ञानिक है, लेकिन बुद्ध के साथ ऐसा कुछ नहीं है'', हिन्दु धर्म में कभी कोई शूद्र ब्राह्मण नहीं बन सकता था, शूद्र शम्बूक का इसी प्रयास में सिर काट लिया था। शूद्र की बात छोड़िए क्षत्रिय विश्वामित्र को ब्राह्मा के समानांतर सृष्टि रचना की शक्ति सम्पन्नता के बाद भी ब्रहमर्षि नहीं स्वीकार किया गया और ब्राह्मणवादी व्यवस्था को चुनौती देने के कारण इतने बड़े पराक्रमी, तपस्वी और ज्ञानी के व्यक्तिव को खलनायकों की भॉति प्रस्तुत किया गया। बौद्ध धर्म में इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। महात्मा बुद्ध ने केवल वैचारिक विरोध ही नहीं किया अपितु व्यवहार में उतारा भी और जोरदार ढंग से जातिवाद का विरोध करते हुए अनेकानेक दलितों को संघ में दीक्षित किया और वे अर्हत्व को प्राप्त किये तथा ब्राह्मणों के बराबर उपदेश करते थे। संघ में प्रवेश लेने वाले में दलित जाति के नाई, उपालि, चाण्डाल कन्या प्रकृति, दासी खज्जुत्तरा, भंगी सुनीत, निम्न जाति के समंगल, अछूत बालक सोपाक और सुप्पिय, कुष्ठरोगी प्रबुद्ध आदि प्रमुख हैं। शाक्य राजकुमारों के साथ उनका नाई उपाधि भी संघ में प्रवज्जित होने के लिए आया था।

इस प्रकार बौद्ध दर्शन के कारण सम्पूर्ण वैश्विक पर्यावरण पर बौद्धिक चेतना का प्रभाव आज भी प्रभावशाली है। आज तक दुनिया के इतिहास में दुखियों के जितने ऑसू महात्मा बुद्ध ने पोंछे हैं, उतना शायद ही दूसरा कोई। उन्होंने दुख और गरीबी को ईसामसीह की भॉति ईश्वर का वरदान नहीं माना। दुख का विश्लेषण उनकी वैचारिक आध्यात्मिक यात्रा का प्रस्थान बिन्दु है और दुख मुक्ति आखिरी पड़ाव। तथागत बुद्ध के अनुसार धर्म का उद्देश्य संसार की उत्पत्ति की व्यवस्था करना न होकर, संसार को कैसे बदला जाय, कैसे यहॉ का दुख–दर्द मिटाया जाय, होना चाहिए। इसीलिए सर्वप्रथम दुख की बात की और संसार को दुख पूर्ण बताया। दुख के स्वरूप को समझा और उसके कारण को जाना। सम्भवतः संसार में जो सुख समझा जाता है, वह भी दुखात्मक होता है। अज्ञान के कारण वस्तु के वास्तविक स्वरूप को न समझने के कारण कुछ वस्तुयें और अनुभूतियों को हम सुखात्मक मान लेते हैं, जब कि अंततः उनसे दुख ही मिलता है। दूसरे सुख के समाप्त हो जाने का दुख ऊपर से। इस प्रकार महात्मा बुद्ध के अनुसार संसार दुखात्मक और क्षणिक है तथा समस्त दुखों का कारण अज्ञान या नासमझी है।

अज्ञान के कारण दलितों को नरक सदृश अनेकानेक दुखों को भोगना पड़ता था। उत्तर वैदिक काल में अपने निजी स्वार्थ के लिए बनायी गयी जातिवादी व्यवस्था को ईश्वर कृत घोषित कर

ब्राह्मणों ने अपने को शीर्ष पर रखा और दलितों और शूद्रों को सबसे नीचे। दलित जातियॉ ऊपर की तीनों जातियों की सेवा करेगी, अस्पृश्य होने के कारण वस्ती से बाहर बसेंगी, शिक्षा, और अच्छे संस्कारों से वंचित बड़ी जातियों की कृपा पर जीवन बितायेगी, कुछ दिनों बाद दलित जातियॉ भी इस व्यवस्था कों अपनी नियति मान ली थी, जिसके चलते उनका जीवन पशुओं से बदत्तर कीड़े–मकोड़े जैसा हो गया था। न पेट भर भोजन मिलता था और न तन ढ़कने को वस्त्र। अपनी छोटी–छोटी आवश्यकताओं के लिए वे बड़ी जातियों का मुॅह ताकते थे।

ऐसी दलित जातियेां में चेतना जागृत करने के लिए महात्मा बुद्ध ने घोषणा की कि न कोई जन्म से शूद्र होता है और न कोई ब्राह्मण। कर्म से ही ऊॅच और नीच होते हैं। शास्त्र और ईश्वर के भय से दलित जातियॉ जो इस पतित व्यवस्था को मानने के लिए बाध्य होती थी, तो महात्मा बुद्ध ने शास्त्र और ईश्वर दोनों को मानने से इन्कार कर दिया। केवल इन्कार ही नहीं किया बल्कि इन्कार के लिए तर्क भी प्रस्तुत किया और यह भी नहीं कहा कि मुझे ईश्वर मानों या ईश्वर की संतान या ईश्वर का देवदुत मानों जैसा– कृष्ण, ईसामसीह और मुहम्मद साहब ने कही है। उन्होंने सीधे–सीधे स्पष्ट शब्दों में कहा, ''तुम मेरी बात इसलिए मत मानों कि मैं कह रहा हूँ। उसे बुद्धि से परखो, तर्क की कसौटी पर कसो, यदि खरी उतरे तब मानो। किसी बात को तुम सत्य इसलिए मत मानों कि वह शास्त्रों में लिखी है या उसको कोई बड़ा सन्यासी या महात्मा कह रहा है। महात्मा बुद्ध और बौद्ध धर्म की इन आध्यात्मिक और सामाजिक क्रांतिकारी अवधारणाओं के चलते दलित जातियों में एक चेतना जागृत हुई जो जतिवाद को चैलेंज करने के लिए समाज में बुद्धिवाद और तर्क को बढ़ावा दिया तथा साथ ही ईश्वर के अस्तित्व और वेदों की अपौरूषेयता को चुनौती दी। ईश्वर को बौद्ध धर्म ही नहीं मानता है ऐसी बात नहीं है – जैनियों ने ईश्वर को नही माना है और तो और वैदिक मतावलम्बी सांख्य और मीमांसा भी ईश्वर को नहीं मानते हैं। वेद की अपौरूषेयता को न्याय–वेदान्त आदि भी चुनौती देते हैं, लेकिन किसी ने ब्राह्मणवादी जाति व्यवस्था को व्यवहारिक रूप से बौद्ध धर्म जैसी– चुनौती नहीं दी थी इसलिए ब्राह्मणवादी व्यवस्था के आचार्य जिनके पोंगा पंथाई की नींव बुद्ध ने हिला दी थी। बौद्ध धर्म के पीछे पड़ गये। ऐसे लोगों द्वारा महात्मा बुद्ध को और उनके अनुयायियों के लिए 'बुद्ध' शब्द का सम्बोधन किया जाता था। लेकिन महात्मा बुद्ध ने स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व और मैत्री की चेतना की जो मशाल जलाई थी, उसके आलोक में निम्न जातियों ने सामाजिक प्रतिष्ठा के साथ–साथ राजनैतिक सत्ता को भी प्राप्त किया। दलित जातियॉ जिन्होंने राजसत्ता पाई थी उसमें नागवंश, नंदवंश, पालवंश आदि प्रमुख हैं।

मध्यकाल में संत आन्दोलन जरूर जातिवाद के खिलाफ आवाज उठायी, लेकिन उससे दलितों की सामाजिक दशा में कोई बदलाव नहीं आया, क्योंकि संतों ने ईश्वर और शास्त्र का विरोध नहीं किया, जो जातिवाद का मूल आधार थे। अधिकांश संतो ने अपने ईश्वर के समक्ष अत्यधिक दैन्यभाव प्रदर्शित किया, जिससे दयनीयता की भावना ईश्वरीय रूप में और अधिक मजबूत हुई थी। केवल कबीर ने खुलकर जतिवाद व्यवस्था को चुनौती दी जिससे वे सामाजिक प्रतिष्ठा को प्राप्त करते। कबीर केवल अध्यात्मिक क्षेत्र में दलितों को जागृत कर सके।

आधुनिक भारत में महात्मा ज्योतिराव फुले ने अपने 'सत्य शोधक समाज' और 'गुलामगिरी' पुस्तक के माध्यम से जातिवाद का सबसे अधिक विरोध किया और दलितों के शोषण की समस्त शास्त्रीय और ईश्वरीय अवधारणाओं को तार–तार कर दिया। बुद्ध, कबीर और ज्योतिराव फुले को आदर्श मानकर दलितों के सबसे बड़े बुद्धिजीवी डॉ0 भीमराव अम्बेडकर इसी दयनीय दशा, अस्पृश्यता, सामाजिक प्रताड़ना अपमान से तंग आकर घोषणा किये कि ''मैं हिन्दु होकर जन्मा हूँ, इसमें मेरा वश नहीं था, लेकिन हिन्दु होकर मरूॅगा नहीं।'' अम्बेडकर मनुष्य के लिए धर्म आवश्यक मानते थे। इसलिए अम्बेडकर के समक्ष समस्या थी कि हिन्दु धर्म छोड़कर कौन सा धर्म स्वीकार किया जाय जिसमें दलितों के अधिकार, सम्मान, भारतीयता और राष्ट्रप्रेम सुरक्षित रहे। इस दृष्टि से उन्होंने विश्व के सभी धर्मों का अध्ययन किया तो बौद्ध धर्म उनकों दलितों के लिए सबसे उपयुक्त लगा, क्योंकि बौद्ध धर्म नव केन्द्रित मानवता प्रधान धर्म है जिसमें मानव के समक्ष ईश्वर को नकार दिया है इस धर्म ने शोषित पीड़ित और दलितजनों को जितनी समाजिक प्रतिष्ठा दिलाई उतना शायद किसी अन्य धर्म ने नहीं। इस धर्म ने अस्पृश्यता के कलंक को सबसे बड़ी चुनौती दी है। यह धर्म स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व प्रधान धर्म है जिसकी खोज अम्बेडकर को थी। यह धर्म दलितों को वह सारे अधिकार और सम्मान प्रदान करता है जो हिन्दु धर्म की अन्य बड़ी जातियों को प्राप्त था।

महात्मा बुद्ध के इसी धर्म की डॉ0 अम्बेडकर ने एक प्रकार से आधुनिक काल में नव बौद्ध धर्म की स्थापना की। डॉ0 अम्बेडकर बौद्ध धर्म स्वयं और दलितों को इसलिए ग्रहण कराया कि यह धर्म स्वतंत्रता, समता और बंधुता से युक्त तर्क पर आधारित मानव कल्याण के लिए एक अनीश्वरवादी नैतिक व्यवस्था थी। इस नैतिक व्यवस्था का केन्द्र भी मनुष्य था और मनुष्य का कष्ट दूर करना उद्देश्य भी था। इसलिए डा0 अम्बेडकर बौद्ध धर्म की बहुत सी मान्यताऍ जो स्वयं बौद्ध धर्म ने अपनी विकास यात्रा में सम्मिलित कर लिया था या वे हिन्दु धर्म के प्रभाव से स्वीकृत हो गयी थी, जो तर्क की कसौटी पर खरी नहीं उतरती थी, उनको अपने नव बौद्ध धर्म में त्याग दिया है। वे धर्म के माध्यम से दलितों को भारतीय समाज में स्वतंत्रता, समानता और न्याय का अधिकार प्रदान कराना चाहते थे। उन्होंने बौद्ध धर्म के सामाजिक क्रांतिकारी रूप को सबसे अधिक पसंद किया। बौद्ध धर्म की जिन मान्यताओं से डॉ0 अम्बेडकर का मतांतर है वे निम्न हैं–

1. महात्मा बुद्ध के प्रव्रज्या का परमपरिक कारण तर्क संगत नहीं है – डॉ0 अम्बेडकर महात्मा बुद्ध के प्रव्रज्या के पारम्परिक कारण को तर्क संगत नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि क्या कुमार सिद्धार्थ 29 वर्ष की उम्र तक किसी वृद्ध रोगी, मृतक और सन्यासी मनुष्य को नहीं देखा था? ये तो ऐसी घटनाऍ हैं, जो आये दिन घटती रहती हैं। सिद्धार्थ के लिए उनके पिता ऐसे ताने–बाने अवश्य बुने थे कि वह वैराग्य के प्रति उन्मुख न हो, लेकिन उनको समाज के काटकर अलग नहीं रखा था। सिद्धार्थ ने अपने जन्म के समय भविष्यवाणी करने वाले आठ ब्राह्मणों से प्राथमिक शिक्षा, सब्बमित्त से वेद, वेदांत और उपनिषद् की शिक्षा तथा भारद्वाज से चित्त एकाग्र करने की शिक्षा ग्रहण। की क्षत्रिय कुलोत्पन्न होने के कारण युद्ध में प्रयुक्त सभी अस्त्र–शस्त्रों में प्रवीणता प्राप्त की। इसके बाद यशोधरा से विवाह इकट्ठे सभी राजकुमारों को परास्त करने के बाद हुआ। इसके बाद दाम्पत्य जीवन भी जिये और राहुल नामक पुत्र की प्राप्ति भी हुई और तब तक उनके समक्ष कोई वृद्ध, रोगी, मृतक और सन्यासी नहीं पड़ा। जबकि जिस भारद्वाज से योग की शिक्षा ग्रहण की थी, वह भी उच्च कोटि का सन्यासी था। इसलिए यह कहना कि 29 वर्ष की उम्र में जब प्रथम बार वृद्ध, रोगी, मृतक और सन्यासी को देखा तो उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ और सबको त्याग का प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। इसी कारण डॉ0 अम्बेडकर ने प्रव्रज्या के पारम्परिक कारण को अतार्किक और असंगत बताया है, क्योंकि बुद्ध ने सूत्र दिया है कि जो बात तुम्हारी बुद्धि को न जंचे उसको तुम इस लिए मत मानों कि वह पहले किसी विशेष व्यक्ति द्वारा कही गयी है।
2. क्या दुःख सत्य है?– बौद्ध धर्म में चार आर्य सत्यों में 'दुःख है', प्रथम आर्य सत्य है। जिसमें जन्मना, मरना, जवानी,

बुढ़ापा, आदि सब दुःख हैं। 'सर्व दुखम्' बौद्ध धर्म का केन्द्रीय उद्घोष बन गया है। डॉ0 अम्बेडकर का कहना है कि ''जीवन स्वभावतः दुःख है'' यह सिद्धांत बौद्ध धम्म की जड़ पर ही कुठाराघात करता है। ये सत्य बुद्ध के धम्म की एक निराशावादी धम्म के रूप में उपस्थित करते हैं। प्रश्न पूछा जा सकता है कि क्या ये चारों आर्य सत्य बुद्ध की मूल शिक्षाओं में हैं अथवा ये बाद का भिक्षुओं द्वारा किया गया प्रक्षिप्तांश है।

आत्मा, कर्म और पुनर्जन्म का एक विशेष अर्थ महात्मा बुद्ध अनात्मवादी है, उन्होंने शाश्वत, नित्य आत्मा के स्वतंत्र अस्तित्व को अस्वीकार कर दिया है, लेकिन साथ ही कर्म तथा पुनर्जन्म के सिद्धांत को स्वीकार किया है तो स्वभाविक प्रश्न उठता है कि बिना आत्मा के कर्म कैसा? और बिना आत्मा के पुनर्जन्म कैसा? महात्मा बुद्ध ने कर्म और पुनर्जन्म का सामान्य अर्थों से भिन्न विशिष्ट अर्थ में प्रयोग किया है।

आत्मा में विश्वास अधम्म है :– ''बुद्ध ने कहा कि जिस धर्म का सारा दारोमदार ''आत्मा पर निर्भर है, वह कल्पनिक धर्म है। आज तक किसी ने भी न तो आत्मा को देखा है और उससे बातचीत की है। आत्मा अज्ञात और अदृश्य है । जो चीज वास्तव में है, वह मन या चित्त है, आत्मा नहीं। मन आत्मा से भिन्न है आत्मा में विश्वास रखना वैदिक धर्म का एक अंग है। वैदिक धर्म (ब्राह्मण धर्म) में 'आत्मा' उस तत्त्व विशेष को कहा गया है, जो शरीर को पृथक किन्तु शरीर के ही भीतर जन्म के समय से लेकर लगातार बना रहता है। शरीर के साथ आत्मा का मरण नहीं होता। यह दूसरे जन्म के समय दूसरे शरीर के साथ जन्म ग्रहण करती है। शरीर आत्मा का एक और अतिरिक्त परिधान है। वैदिक धर्म की इस मान्यता में भगवान बुद्ध का विश्वास नहीं था, वह अनात्मवादी थे। डॉ0 अम्बेडकर के अनुसार 'यदि एक अशरीरी 'आत्मा' में विश्वास कर लिया जाय, तो उसके सम्बन्ध में बहुत से प्रश्न पैदा होते हैं। आत्मा क्या है? आत्मा का आगमन कहॉ से हुआ? शरीर के मरने पर इसका क्या होता है? यह कहॉ जाता है? शरीर के न रहने पर यह परलोग में कैसे रहता है? जो लोग आत्मा के अस्तित्व के सिद्धांत के समर्थक थे, भगवान बुद्ध ने उनसे ऐसे प्रश्नों का उत्तर चाहा था। इस प्रश्नों का आत्मवादियों द्वारा काल्पनिक उत्तर के अलावा कोई ठोस स्पष्ट उत्तर नहीं दिया गया।

डॉ0 अम्बेडकर लिखते हैं कि भगवान बुद्ध आत्मा के विषय में कहते थे कि आत्मा में विश्वास करना भी उतना ही मिथ्या का घर है, जितना परमत्मा में विश्वास करना। आत्मा में विश्वास करना परमात्मा में विश्वास करने की अपेक्षा खतरनाक है, क्योंकि इससे इतने ही नहीं होता है कि पुरोहितों का वर्ग पैदा हो जाता है, बल्कि आत्मा में विश्वास के फलस्वरूप आदमी के जन्म से मरण पर्यन्त उसके समस्त जीवन पर पुरोहितशाही का अधिकार हो जाता है डा0 अम्बेडकर कहते हैं कि ''इन्हीं सामान्य तर्कों के कारण कहा जाता है कि भगवान बुद्ध ने आत्मा के बारे में अपना कोई निश्चित मत अभिव्यक्त नहीं किया। कुछ दूसरे लोगों का कहना है कि उन्होंने आत्मा के सिद्धान्त का खण्डन नहीं किया है। कुछ औरों ने कहा है कि भगवान बुद्ध ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि आत्मा नाम का कोई पदार्थ नहीं है। इस कारण आत्मा के सम्बन्ध में तथागत का मत अनात्मवाद कहलाया है।

डॉ0 अम्बेडकर का मानना है कि आत्मा के विरूद्ध सामान्य तर्क के अतिरिक्त भगवान बुद्ध ने विशेष तर्क भी दिया है, जो आत्मा के अस्तित्व को नकारने के लिए अकाट्य तर्क है, भगवान बुद्ध ने आत्मा के अस्तित्व की स्थापना के विरूद्ध नाम रूप का सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। नाम–रूप एक प्राणी समूल का सामूहिक नाम है। प्रत्येक प्राणी कुछ भौतिक तत्त्वों तथा मानसिक तत्त्वों के सम्मिश्रण का परिणाम होता है। ये भौतिक तथा मानसिक तत्त्व स्कन्ध कहलाते हैं। रूप स्कन्ध प्रधान रूप से पृथ्वी, जल, वायु तथा अग्नि इन चार भौतिक तत्त्वों का परिणाम है, जो रूप अथवा शरीर कहा जाता है। रूप स्कन्ध के अतिरिक्त नाम स्कन्ध है, जिससे प्राणी की रचना होती है। नाम स्कन्ध को ही विज्ञान (चेतना) भी कह सकते हैं। वैसे नाम स्कन्ध के अन्तर्गत वेदना संज्ञा संस्कार है। विज्ञान भी इन तीनों के साथ सम्मिलित कर लिया जाता है। डॉ0 अम्बेडकर 'विज्ञान' का विज्ञानवादी दृष्टि से वर्णन करते हुए लिखते हैं कि – ''एक आधुनिक मानसशास्त्रवेत्ता कदाचित् इसे इस रूप में कहना पसन्द करेगा कि चित्त ही वह मूल स्रोत है, जिससे सभी चैतसिक उत्पन्न होते है' विज्ञान की उत्पत्ति आदमी के जन्म के समय होती है और मृत्यु के समय समाप्त हो जाता है, तो क्या विज्ञान को चार भौतिक तत्त्वों के मिश्रण का परिणाम कहा जाता है ? भगवान बुद्ध ने विज्ञान को भौतिक तत्त्वों की सह स्थिति अथवा उनके सम्मिश्रण से उत्पन्न माना है, बल्कि रूप काय के साथ–साथ नाम काय को स्वीकार किया है। भगवान बुद्ध ने इस तथ्य के पक्ष में डॉ0 अम्बेडकर आधुनिक विज्ञान की एक उपमा प्रस्तुत करते हैं ''जहॉ –जहॉ विद्युत क्षेत्र होता है, वहॉ–वहॉ उसके साथ आकर्षण क्षेत्र रहता है, कोई नहीं जानता है कि यह आकर्षण क्षेत्र किस प्रकार उत्पन्न होता है या किस प्रकार अस्तित्व में आता है? लेकिन जहॉ–जहॉ विद्युत क्षेत्र होता है वहॉ–वहॉ यह (आकर्षण क्षेत्र) उसके साथ अनिवार्य रूप से रहता है। इसी प्रकार शरीर और विज्ञान में सम्बन्ध क्यों न मान लिया जाय?'' विज्ञान की विशेषता बताते हुए तथागत कहते है कि जब विज्ञान का उदय होता है, तभी आदमी जीवित प्राणी बनता है। इसलिए आदमी के जीवन में विज्ञान प्रधान वस्तु है। विज्ञान की प्रकृति है– ज्ञान मूलक, भगवान मूलक और क्रिया मूलक। विज्ञान को हम ज्ञान मूलक उस समय कहते हैं, जब यह हमें कुछ जानकारी देता है, कुछ ज्ञान प्रदान करता है– वह रूचिकर भी हो सकता है और अरूचिकर भी। विज्ञान को हम भावना मूलक उस समय कहते हैं, जब यह चित्त की उन अवस्थाओं में उपस्थित रहता है जो अनुकूल अनुभूतियों भी हो सकती है और प्रतिकूल भी। जब भावनामूलक ज्ञान वेदना (अनुभूति) की उत्पत्ति का कारण बनता हैं। विज्ञान अपनी क्रियाशील अवस्था में आदमी को उद्देश्य विशेष की सिद्ध के लिए कुछ करने की प्ररेणा देता है। क्रियाशील विज्ञान ही संकल्पों का जनक होता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि इस प्राणी की जितनी भी क्रियाएँ हैं वे या तो विज्ञान के द्वारा अथवा विज्ञान के परिणाम स्वरूप पूरी होती है।'' इस प्रकार आत्मा के समस्त कार्य भगवान बुद्ध द्वारा विश्लेषित विज्ञान कर देता है। आत्मा के लिए कुछ कार्य ही शेष नहीं बचता है। अतः जिस आत्मा का कोई कार्य ही नहीं, ऐसी आत्मा बेहूदगी। इस प्रकार बुद्ध ने आत्मा के अस्त्वि को असिद्ध किया है। यही कारण है कि आत्मा का अस्त्वि स्वीकार करना अधम्म है।

कर्म

डॉ0 अम्बेडकर का मानना है कि कुछ लोग बौद्ध धर्म के कर्म सिद्धान्त के ब्राह्मण के कर्म सिद्धान्त के समान मानते हैं, जबकि दोनों के कर्म सिद्धांतो में बहुत बड़ा अंतर है। जहॉ पर बौद्ध धर्म का कर्म सिद्धांत आत्मवादी है। ब्राह्मण धर्म का कर्म सिद्धांत वंशानुगत और एक जन्म से दूसरे जन्म से आत्मा का संसरण स्वीकार करता है, जब कि इस बात को बौद्ध धर्म स्वीकार नहीं करता है।

ब्राह्मण धर्म के कर्म सिद्धांत के अनुसार ''जब कोई व्यक्ति कर्म करता है, तो उसके कर्म के दो परिणाम होते हैं। एक तो उस कर्म से वह करने वाला प्रभावित होता है, दूसरे उस कर्म का उसकी आत्मा पर प्रभाव पड़ता है। उस व्यक्ति की मृत्यु के बाद कर्म संस्कार आत्मा के साथ दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। ये संस्कार ही व्यक्ति के भावी जन्म और स्थिति का निर्णय करते हैं। जबकि बौद्ध धर्म के कर्म सम्बन्धी वैदिक मन्यताओं का पूर्णतः

खण्डन किया गया है। डॉ0 अम्बेडकर लिखते हैं कि – ''ब्राह्मण धर्म को पढ़ा लिखा वर्ग यह जान बूझकर प्रचारित करता है कि बौद्ध धर्म का कर्म सिद्धान्त वैदिक कर्म सिद्धान्त के समान है अर्थात् बुद्ध कर्म सम्बन्ध में वही बात कहते है, जो वैदिक धर्म में कहीं गयी है। इस प्रकार बौद्ध धर्म के कोई नई स्थापना न होकर वैदिक धर्म का ही रूप है।

बौद्ध धर्म का कर्म सिद्धांत

बौद्ध धर्म के कर्म सिद्धांत का उद्देश्य समाज में नैतिक अनुशासन स्थापित करना है, जो मात्र वर्त्तमान जन्म से सम्बन्धित होता है। इस धर्म में कभी भी कर्म का अर्थ पूर्व जन्म के कर्म से नहीं लिया गया है और न किसी व्यक्ति की अच्छी और बुरी स्थिति के लिए पूर्व जन्म के कर्मों का सहारा हीं लिया गया है। कोई गरीब और निर्धन है, तो अपने पूर्व जन्म के बुरे कर्मों के कारण और धनी है तो वह भी अपने पूर्व जन्म के अच्छे कर्मों के कारण। इस मान्यता का भगवान बुद्ध वे सर्वथा खण्डन किया है। भगवान बुद्ध के अनुसार मानव का आरम्भ माता–पिता के जीवित रजकण और शुक्राणु के आपसी मेल से होता है न कि पूर्व आत्मा और उसके पूर्व कर्म के अनुसार।

बौद्ध धर्म में व्यक्ति को कुशल कर्म (शुभ कर्म) करने की आवश्यकता पर बल दिया जाता है। भगवान बुद्ध ने कहा है कि भिक्षुओं कुशल कर्म करने में मत झिझको। यह जो कुशल कर्म शब्द है, यह एक प्रकार से सुख या जिसकी हम इच्छा करते हैं, उसका या जो कुछ हमको प्रिय है, उसका अथवा जो कुछ हमें आनंद देने वाला है, उसका पर्याय है। भिक्षुओं मैं स्वंय साक्षी हूँ कि मैनें स्वंय चिरकाल तक शुभ कर्मों के इच्छित, रूचिकर, प्रिय तथा आनदंदायक फल का उपभोग किया है।

भगवान बुद्ध कहते हैं मैं प्रायः अपने से पूछता हूँ कि यह किस कुशल कर्म का परिणाम है, यह इस कुशल कर्म का फल है कि मैं इस समय इतना संतुष्ट और सुखी हूँ? जो उत्तर मुझे मिलता है वह यह किस संतुष्टी और सुख का कारण तीन कुशल कर्मो दान शील और संयम का फल है।

बौद्ध धर्म में कर्म दो प्रकार के माने गये हैं– कुशल कर्म और अकुशल कर्म। कुशल कर्म वे हैं, जिससे व्यक्ति को सुख और संतुष्टि मिलती है और अकुशल कर्म वे हैं, जिससे व्यक्ति को असंतुष्टि और दुख मिलता है। इन्हीं कर्मो को मानव जीवन के नैतिक संस्थान का आधार मानना ही भगवान बुद्ध ने धम्म कहा हैं। इन्हीं से व्यक्ति का जीवन संचालित हेाता है। वैदिक धर्म में इन कर्मों का संचालन ईश्वर करता है, लेकिन बौद्ध धर्म में इन नैतिक कर्मों का संचालन कोई ईश्वर न होकर स्वंय ये नैतिक कर्म के नियम है, जो व्यक्ति का निर्भर करते हैं और किसी पर नहीं।

डॉ0 अम्बेडकर बौद्ध दर्शन के कर्म सिद्धांत को इसलिए अधिक पसन्द करते थे कि इस कर्म सिद्धांत में शोषितों और पीड़ितों की वर्तमान दशा को पूर्व जन्म के कर्म पर आधारित न मानकर समाज की अन्याय और गौरबराबरी पर आधारित व्यवस्था को बताया। इस व्यवस्था को बदलकर शोषितों और दलितों को समता और सम्मान का अधिकार दिलाया जा सकता है। जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता के कलंक को इस सिद्धांत के माध्यम से हटाया जाना उपयुक्त समझा। दलितों के समस्त अपमान और दुःख का कारण है, इस शोषण पर आधारित वैदिक (ब्राह्मणवादी) कर्म सिद्धांत को स्वीकार करना।

पुनर्जन्म

भगवान बुद्ध पुनर्जन्म मानते हैं, लेकिन वैदिक धर्म की पुनर्जन्म की अवधारण से उसकी पुनर्जन्म सम्बन्धी अवधारण बिल्कुल भिन्न है। भगवान बुद्ध के अनुसार पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु से हमारा शरीर बना है और जब इस शरीर का मरण होता है,तो इसके चारो भौतिक पदार्थ विनष्ट होकर जैसा कि उच्छेदवादी मानते हैं, पहले से विद्यमान अपने–अपने महत्त्वों की राशि में मिल जाता है। ''इस विद्यमान राशि में से जब चारों महाभूतों का पुनर्मिलन होता है, तो पुनर्जन्म होता है। भगवान बुद्ध का पुनर्जन्म का अभिप्राय यही था। इन भौतिक पदार्थो के लिए यक आवश्यक नहीं है कि वे शरीर के हो जिसका मरण हो चुका है, वे नाना मृत शरीरों के भौतिक अंश हो सकते हैं। कुछ लोगों की शंका है कि जब आत्मा नहीं तो पुनर्जन्म किसका? भगवान बुद्ध बिना आत्मा के अस्तित्त्व के भी पुनर्जन्म संभव बताया है, जैसे आम का बीज है। आम के बीच से आम का पेड़ पैदा होता है। आम के पेड़ पर आम के फल लगते हैं। यह आत का पुनर्जन्म है। डॉ0 अम्बेडकर का कहना है कि यहॉ पर आत्मा की तरह आम कोई सत्ता नहीं है, लेकिन फिर भी आम फल लगता है, इसी प्रकार बिना आत्मा के पुनर्जन्म संभव है।

धर्म और धम्म

डॉ0 अम्बेडकर ने धर्म और धम्म में अंतर किया है। उनके अनुसार 'धर्म' एक निश्चित शब्द है, जिसका कोई स्थिर अर्थ नहीं। शब्द एक होते हुए, यह अपने विकास की विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न प्रकार की मान्यताओं का संवाहक था। अपनी प्राथमिक अवस्था में जिसमें प्राकृतिक घटनाएं मनुष्य के समझ के बाहर थी। इन पर काबू पाने के लिए जो भी टोना–टोटका किया जाता था। जादू कहलाता था। उस समय धर्म और जादू एक ही चीज के दो नाम थे। धर्म विकास की दूसरी अवस्था में आदमी के विश्वास, धार्मिक कर्म–काण्ड, रीति–रिवाज, प्रार्थनाएं थी कि कोई विशेष शक्ति है, जिसके कारण सभी घटनाएं घटती रहती हैं और जो आदिम आदमी की समझ से परे की बात थीं। आरम्भ में यह शक्ति शौतान का ही रूप थी, लेकिन दूसरी अवस्था में शिव (कल्याणकारी) रूप भी माने जाने लगी। धर्म के विकास की तीसरी अवस्था में यह माने जाने लगी कि एक ही शक्ति ने आदमी और दुनिया दोनों को पैदा किया है। इसके बाद धर्म की मान्यता में यह बात भी शामिल हो गयी है कि हर आदमी को देह में एक 'आत्मा' है, और नित्य वह 'आत्मा' को ईश्वर के प्रति उसके लिए उत्तरदायी रहना पड़ता है। धर्म इन सब मान्यताओं के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

भगवान बुद्ध द्वारा प्रयुक्त धम्म उपरोक्त वर्णित धर्म की मन्यताओं से भिन्न हैं। जहॉ धर्म व्यक्तिगत जीवन की वस्तु है, वहीं पर 'धम्म' सार्वजनिक जीवन की। धर्म में नैतिकता का कोई स्थान नहीं है, जबकि धम्म में और नैतिकता में कोई अन्तर हीं नही है। धम्म सदाचरण है, जो व्यक्ति के जीवन के सभी क्षेत्रों में दूसरों के प्रति अच्छे व्यवहार से है। धम्म समाज के लिए आवश्यक है, जबकि धर्म के बिना भी समाज चल सकता है। धम्म में एक अनुशासन है इसी लिए जो स्वतंत्रता चाहते हैं, उनके लिए आवश्यक है । धम्म के दो प्रधान अंग हैं – प्रज्ञा और करूणा। प्रज्ञा का अर्थ है निर्मल बुद्धि। जो कि मिथ्या विश्वासों से बचाती है और करूणा का अर्थ है दया, प्रेम और मैत्री। इनके बिना न समाज जीवित रह सकता है और न उसकी उन्नति हो सकती है।

निष्कर्षः

इस प्रकार भगवान बुद्ध का 'धम्म' धर्म की मूल भावना के विपरीत प्रज्ञा और करूणा का एक अलौकिक सम्मिश्रण है।

भगवान बुद्ध ने धम्म में अपने को न राम–कृष्णा की भॉति ईश्वर बताया और ईसामसीह और मुहम्मद की भॉति अपने को ईश्वर पुत्र या देवदूत ही। वे मोक्षदाता न होकर मार्गदाता थे। बुद्ध के मार्गदाता रूप को ही श्रीमती करोलिव हिस डेव्हिसले और डॉ0 अम्बेडकर भी स्वीकार करते हैं।

डॉ0 अम्बेडकर के अनुसार ''सच्चा धर्म'' मानव के दुःख को समझना और उसे नष्ट करना है। बुद्ध ने दरिद्रता का कभी उदात्तीकरण नहीं किया। ईसा ने पहाड़ी पर किये उपदेश में जैसे– ''ब्लेसेड आर द पूअर'' कहा वैसे बुद्ध ने कभी नहीं कहा और न गरीब और दुर्बलों को स्वर्ग की अभिलाषा जगायी। बल्कि लोगों का हृदय परिवर्तित कर शील और प्रज्ञा का ऐसा पाठ पढ़ाया, जिससे वे स्वंय बुद्धत्व को प्राप्त कर सकें।

सन्दर्भः

1. भगवान बुद्ध एवं जाति प्रथा भिक्षु यू0 धम्म रतन, पृष्ठ– 11
2. पुरूष सूक्त, ग्वेद– 1
3. पज्झिम निकाय – 1
4. भारद्वाज आलार कलाम का शिष्य था, जो कपिल वस्तु में आश्रम बनाकर रहता था।
5. बुद्ध और उनका धम्म परिचय, पृष्ठ– 26, 27
6. बुद्ध और उनका धम्म, पृष्ठ– 158
7. बुद्ध और उनका धम्म, पृष्ठ– 158
8. बुद्ध और उनका धम्म, पृष्ठ– 158 – 159
9. बुद्ध और उनका धम्म, पृष्ठ– 160
10. बुद्ध और उनका धम्म, पृष्ठ– 160
11. बुद्ध और उनका धम्म, पृष्ठ– 160
12. बुद्ध और उनका धम्म, पृष्ठ– 161
13. बुद्ध और उनका धम्म, पृष्ठ– 161
14. वही, पृष्ठ– 161
15. बुद्ध और उनका धम्म, पूष्ठ– 201
16. अंगुत्तर निकाय, दन्तक निकाय
17. बुद्ध और उनका धम्म, पृष्ट– 225
18. बुद्ध और उनका धम्म, पृष्ट– 197
19. बुद्ध और उनका धम्म, पृष्ट– 88–89
20. बुद्ध और उनका धम्म, पृष्ट– 190
21. बुद्ध और उनका धम्म, पृष्ट– 190